**कृष्णभक्ति-काव्य परंपरा**

कृष्ण शब्द का उल्लेख सबसे पहले ऋग्वेद में मिलता है| ऐसा माना जाता है कि ऋग्वेद के अष्टम एवं दशम मंडल के कुछ सूक्तों के रचयिता ऋषि कृष्ण हैं| इसी वेद के प्रथम मंडल में भी कृष्ण का उल्लेख किया गया है| इसी प्रकार कौशीतकी ब्राह्मण में अंगिरस ऋषि के शिष्य कृष्ण का वर्णन है| छान्दोग्योपनिषद में भी अंगिरस ऋषि के शिष्य कृष्ण का वर्णन मिलता है जो देवकी का पुत्र कहा गया है| पर महाभारत का कृष्ण और यह कृष्ण दोनों एक ही है इस बात पर विद्वानों के अलग अलग मत हैं| अधिकांश का मानना है कि दोनों भिन्न हैं| भारतीय परंपरा में महाभारत के कृष्ण का ही कालांतर में विकास हुआ और वे वैष्णव सम्प्रदाय के अराध्य कृष्ण के रूप में स्थापित हुए| महाभारत में वर्णित कृष्ण का प्रारंभिक रूप सामान्य मानव का रूप है, किन्तु बाद में यह ग्रंथ परिवर्तित एवं परिवर्धित होता रहा तथा कृष्ण परमब्रह्म, विष्णु, नारायण आदि के रूप में प्रतिष्ठित होते गए| महाभारत में कृष्ण सात्वत यदुवंशीय क्षत्रीय के रूप में अंकित हैं| गीता में पहली बार कृष्ण को दार्शनिक चरित्र के रूप में चित्रित किया गया और यही रूप आगे चलकर परम देवत्व के रूप में स्वीकार किया गया| महाभारत और गीता के बाद पुराणों में कृष्ण का जो रूप चित्रित हुआ उसका कोई ठोस प्रमाण उपलब्ध नहीं है| पर ऐसा माना जाता है कि पुराण में ही पहली बार कृष्ण पूर्णावतार की संज्ञा से अभिहित किया गया था| भागवत पुराण में कृष्ण की महिमा का गान सबसे अधिक किया गया है| यही पर ब्रजलीला करने वाले कृष्ण का वर्णन सबसे पहले मिलता है| पुराणों में वर्णित कृष्ण न शुद्ध रूप से ब्रजवासी कृष्ण हैं नहीं द्वारिका के राजा| महाभारत के कृष्ण इन दोनों के बीच का चरित्र मालूम पड़ता है| यही से कृष्ण-राधा प्रसंग एवं रुकमनी, सतभामा के अलावे सोलह हजार गोपियों का वर्णन भी प्रारंभ होता है| और फिर अश्वघोष के ‘ब्रह्मचारित’ से गाथा सप्तशती, गीत-गोविन्द, विद्यापति की पदावली से होते हुए सूरदास तक आते-आते कृष्ण विष्णु के अवतार के रूप में स्थापित होते हैं| मध्यकाल में जब जनमानस राजनैतिक, सामाजिक एवं सांकृतिक त्रासदी से गुजर रहा था तब कृष्ण का एक कल्याणकारी चरित्र हमारे समने आता है जो लोकरंजक भी है और लोकरक्षक भी| यहाँ कृष्ण केवल ईश्वर का रूप ही नहीं बल्कि किसी का पुत्र, किसी का मित्र, किसी का प्रीतम और किसी का स्वामी बनकर मानवता के हित की बात करता है| सबके लिए सुलभ और स्वीकार्य रूप में चित्रित होता है| यह कृष्ण केवल समाज की बुराइयों से ही नहीं मुक्ति दिलाता बल्कि उस समय के सामाजिक बन्धनों को भी तोड़ता है| स्त्रियों को सामन्ती मानसिकता से लड़ने की प्रेरणा देता है|

**सूरदास**

कृष्ण भक्ति शाखा के कवियों में सूरदास का महत्वपूर्ण स्थान है| आज जिस राधा और कृष्ण की मूर्ति हर घर में या जनमानस के मन में व्याप्त है वह सूरदास द्वारा सृजित राधा-कृष्ण की मूर्ति है| इन्होंने अपनी कल्पना में जिस कृष्ण को रचा आज वह जन-जन का सिरजनहार है| भक्तमाल (ले.- नाभादास) चौरासी वैष्णव की वार्ता (ले.- गोकुलनाथ) आदि जीवन वृत आधारित ग्रंथों से पता चलता है कि इनका जन्म 1478 ई. के दिल्ली आसपास ब्रज क्षेत्र के किसी सीही गाँव में हुआ था| इनके विषय में कहा जाता है कि ये जन्मांध थे| इन्होंने अपने को ‘जनम को आंधर’ कहा भी है| परन्तु इनके शब्दार्थ पर नहीं जाना चाहिए| सूर के काव्य में प्रकृति और जीवन का जो सूक्ष्म सौन्दर्य चित्रण है उससे यह नहीं लगता कि ये जन्मांध थे| सूरदास के बाद से ही शायद नेत्रहीन के लिए सूर शब्द का प्रचालन होने लगा| ऐसा माना जाता है कि ये वैराग्य ले कर गऊघाट पर भक्ति भजन करते हैं| यही इनकी मुलाकात वल्ल्लभाचार्य से होती है| इनके भागावाद् भजन से खुश हो कर वल्लभाचार्य इन्हें अपना शिष्य बनाते हैं और पुष्टिमार्ग में दीक्षित करते हैं| सूरदास को आगे चल कर पुष्टिमार्ग पुष्टिमार्ग का जहाज कहा गया| वल्ल्लभाचार्य के पुत्र विट्ठलनाथ ने जब अष्टछाप नमक एक भजन मंडली बनायीं तो सूरदास उसके प्रमुख सदस्य थे| इन मंडली ने कृष्णभक्ति शाखा के समृद्ध किया| इनमें पांच वल्लभाचार्य के शिष्य थे, कुम्भनदास, सूरदास, परमानन्ददास और कृष्णदास तथा विट्ठलनाथ के चार शिष्य गोविन्दस्वामी, नंददास, छीतस्वामी और चतुर्भुजदास| इन सब में सूरदास की कवितायें ज्यादा मार्मिक एवं भाव प्रधान हैं| इन्होंने अपना सम्पूर्ण जीवन भागवत भजन में गुजरा| पुष्टिमार्ग में दीक्षित होने के बाद से वे चंद्रसरोवर के समीप पारसोली गाँव में रहते थे| सन् 1583 ई. में यहीं इनकी मृत्यु हुई| ‘सूरसागर’ इनकी प्रनुख रचना है| इसमें कृष्ण के बाल-लीला, रास-लीला, कंश-बद्ध से लेकर भ्रमर गीतसार आदि अनेक पारंपरिक एवं नवीन कथाओं का वर्णन किया गया है|

सूरदास के पहले ब्रजभाषा में काव्य-रचना की परंपरा तो मिलती है, किन्तु भाषा की यह प्रौढ़ता, चलतापन और काव्य का यह उत्कर्ष नहीं मिलता| अतः कहा जा सकता है कि सूर केवल ब्रजभाषा के प्रवर्तक ही नहीं बल्कि ब्रजभाषा काव्य-परंपरा के चरमोत्कर्ष हैं|आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने सूर को एक ओर जयदेव, विद्यापति और चंडीदास की परंपरा से जोड़ा है तो दूसरी ओर लोकगीतों की परंपरा से भी| विद्यापति और सूरदास में जो निरीहता, तन्मयता मिलती है, अनुभूतियों को जिस प्रकार बाह्य प्रकृति के ताने-बाने में बुना गया है, वह लोकगीतों की विशेषता है| लोकगीतों में अभिव्यक्ति इतनी निश्छल होती है कि वह शास्त्रीयता और सामाजिक विधि-निषेध की मर्यादा का निर्वाह नहीं कर सकती| इसी लोकजीवन और लोकगीतों में राधा-कृष्ण की जो परंपरा पहले से चली आ रही थी, वह भक्तिकाल में प्रकट हुई| जयदेव का गीत-गोविन्द, विद्यापति की पदावली, चंडीदास का काव्य और सूरदास का सूरसागर उसी परंपरा से जुड़े हैं|

सूरदास वात्सल्य और श्रृंगार के कवि हैं| भारतीय साहित्य ही नहीं बल्कि संभवतः पुरे विश्व साहित्य में कोई भी कवि वात्सल्य के क्षेत्र में इनके समकक्ष नहीं है| यह इनकी ऐसी विशेषता है कि केवल इसी के आधार पर ये साहित्य के क्षेत्र में विशिष्ट स्थान के अधिकारी मने जा सकते हैं| बाल-जीवन का पर्यवेक्षण एवं चित्रण महान महान ह्रदय वाला एवं मानव-प्रेमी ही कर सकता है| सूरदास ने वात्सल्य और श्रृंगार का वर्णन लोक सामने की भाव भूमि पर किया है| तुलसीदास की अपेक्षा सूर का विषय क्षेत्र सीमित अवश्य है, किन्तु सूर ने राधा-कृष्ण की प्रेम-लीला और कृष्ण की बाल-लीला को प्रकृति और कर्म के विशद् क्षेत्र का सन्दर्भ प्रदान किया| लोक साहित्य में यह सन्दर्भ सहज तौर पर जुड़ा दिखाई पड़ता है| लोक-साहित्य की सहज जीवंतता जीतनी सूर के साहित्य में मिलती है, उतनी हिंदी के किसी कवि में नहीं मिलती|

सूर ने कृष्ण-कथा को अपनी परंपरा से लिया किन्तु उसमें अनेक सहज विस्तार किये जो उस समय की सामाजिक जीवन से प्रेरित है| सूरदास के समय में स्त्रियाँ प्रायः घर के अन्दर चारदीवारी में कैद थी| स्त्रियों केवल पुरुष के उपभोग की सामग्री बन कर रह गई थी| परन्तु सूर ने पहली बार उसे चारदीवारी से मुक्त किया| वह किसी से उपभोग की वास्तु नहीं बल्कि उसकी भी अनेकानेक आकांक्षाएं हैं| वह भी प्रेम करना चाहती है| अपनी सहेलियों के साथ खुले आकाश के निचे हवाओं की तरह घूमना नाचना चाहती हैं| सूर के सम्पूर्ण काव्य में मनुष्य की इन आकांक्षों का चित्रण किया गया है| इनका कृष्ण ईश्वर होते हुए भी रेता, पेता, मना मंसुक्खा का मित्र है, गरीब सुदामा का अभिन्न सखा है, गोपियों का प्रेमी है, राधा का प्रियतम है और यशोदा का पुत्र है| भक्ति के मूल में ईश्वरत्व का आलम्बन है किन्तु चित्रण में अपने समय के कृषि जीवन को ही अभिव्यक्त करने का प्रयास किया गया है|

**सगुणोपासना**

अबिगत-गति कछु कहत न आवै|

ज्यौं गूंगौं मीठे फल कौ रस अंतरगत हीं भावै|

परम स्वाद सबही सु निरंतर अमित तोष उपजावै|

मन-बानी कौं आगम-अगोचर, सो जाने जो पावै|

रूप-रेख-गुन जाति जुगति-बिनु निरालंब कित धावै|

सब विधि आगम विचारहिं तातैं सूर सगुन-पद गावै||2||

**मुरली**

जब हरि मुरली अधर धरत

थिर चर, चर थिर पवन थकित रहैं, जमुनाजल न बहत|

खग मोहैं, मृग-जूथ भुलाहीं, निरखि मदन-छबि छरत|

पसु मोहैं, सुरभी विथकित, तृन दंतनि टेकि रहत|

सुक सनकादि सकल मुनि मोहैं, ध्यान न तनक गहत|

सूरजदास भाग हैं तिनके, जे या सुखहिं लहत||38||

सन्दर्भ

1. धीरेन्द्र वर्मा, सूरसागर, साहित्य भवन प्रकाशन प्रा. ली., जीरोरोड, इलाहाबाद|
2. विश्वनाथ त्रिपाठी, हिंदी साहित्य का सरल इतिहास, ओरियंटल ब्लैकस्वान पब्लिकेशन, हैदराबाद
3. नागेन्द्र, हिंदी साहित्य का इतिहास
4. आचार्य रामचंद्र शुक्ल, हिंदी साहित्य का इतिहास
5. आचार्य रामचंद्र शुक्ल, त्रिवेणी

**मीराबाई**

कृष्णभक्ति शाखा की एक मात्र कवयित्रीमीराबाई का जन्म 1516 ई. में हुआ था| ये महाराणा सांगा के पुत्र महाराणा भोजराज की पत्नी थीं| कहा जाता है कि विवाह के कुछ वर्षों बाद जब इनके पति का देहांत हो गया तो ये साधू-संतों के बीच भजन-कीर्तन करने लगीं| इनका इस तरह आम जनों के साथ मिलना जुलना उनके परिवार वालों को, विशेषकर उनके देवर राणा विक्रमादित्य अत्यंत रुष्ट हुए| वे मीरा को अनेक प्रकार की यातनाएं दीं| अंत में मीरा वहां से द्वारिका चली गयीं| वहीँ 1546 ई. में इनकी मृत्यु हो गई|

प्रायः भक्त कवियों में यह बात पाई जाती है कि वे अपने इष्ट के पास अपने जीवन के आभावों को लेकर उनकी पूर्ति के लिए जाते हैं| पर मीरा अपने समय के सामाजिक कुरीतियों से टकराने में कृष्ण के गिरिधर रूप को अपने संबल का आधार बनती है| मीरा एक संभ्रांत परिवार की थी इसलिए उसका सामान्य लोगों के बीच उठना-बैठना उसके परिवार को स्वीकार्य नहीं था| इस समाज में नारी पति के मरने के बाद या तो सती हो जाती है या घर की चारदीवारी में कैद होकर वैधव्य झेलने के लिए अभिशप्त थी| मीरा ने समाज की इस व्यवस्था को चुनौती दी| लोक लाज त्याग कर अपने प्रभु गिरिधर नागर की भक्ति में लीन हो गई| लोक लाज तजने की बात मीरा की कविताओं में बार-बार आती है| अपनी कविताओं मने मीरा ने अपने इष्ट देव गिरिधर का जो रूप निर्मित किया है वह अत्यंत मोहक है|मीरा के रूप चित्रण की यह भी विशेषता है कि वह प्रायः गतिशील है| गिरिधर नागर को प्रायः सचेष्ट अंकित किया जाता है, या तो वे मुरली बजाते हैं, या मंद मंद मुस्काते हैं या मीरा की गली में चुपके से प्रवेश करते हैं| मीरा नारी सुलभ लज्जा के कारण सीधे मुँह से कम ही बात करती हैं| कृष्ण के सामने न रहने पर यानी वियोगावस्था में वार्तालाप करती हैं| अनुनय-विनय करती हैं| विरह मीरा के निजी जीवन का भी सबसे बड़ा यथार्थ है और उनके काव्य का भी| मीरा के विरह की सच्चाई का लक्षण यह है कि वे विरह की पीड़ा के ताप से मुक्त होना चाहती हैं| वेदना की सच्चाई का एक और लक्षण यह भी है कि व्यक्ति उससे मुक्ति के लिए छटपटाए| मीरा के काव्य में ये सभी लक्षण अपनी मार्मिकता के साथ अभिव्यक्त हुए हैं| मुक्ति संभव न हो तो भी मनुष्य मुक्तावस्था का स्वप्न देखता है| मीरा के यहाँ विरह वेदना उनका यथार्थ है, तो कृष्ण से मिलना उनका स्वप्न| इनके इन पंक्तियों में इनके जीवन के यथार्थ को देख सकते हैं- *अँसुवन जल सींचि-सींचि, प्रेम-बेलि बोई|* और इनके स्वप्न के प्रतिनिधिक पंक्ति हैं- *सावन माँ उमग्यो म्हारो हियरा, भाणक सुन्या हरि आवण री|* इन पंक्तियों के माध्यम से मध्यकालीन नारी के जीवन का प्रतिबिम्बन भी हुआ है|

मीरा भक्त कवि हैं| उनकी व्याकुलता एवं वेदना उनकी कविताओं में निश्छल अभिव्यक्ति पाती है| मीरा की कविताओं में रूप, रस और ध्वनि के प्रभावशली बिंब हैं| वे अपनी कविता में निहित वेदना को श्रोताओं और पाठकों के अनुभव के माध्यम से संप्रेषित करती हैं- *“घायल की गति घायल जानै और ना जानै कोई”* का यही अभिप्राय है|

मीरा की कविताओं पर निर्गुण-सगुण, दोनों साधनाओं का प्रभाव है| उन पर नाथ मत का भी प्रभाव दिखाई पड़ता है| इनके इष्ट देव कृष्ण ही है किन्तु रामकथा से सम्बंधित गेय पद भी इन्होंने लिखें हैं|मीरा की कवितायेँ शिष्ट समाज के साथ-साथ राजस्थान के भील समाज में भी बहुत लोकप्रिय है|

**मीरा का काव्य**

**1.**

मैं गिरधर के घर जाऊं||टेक||

गिरधर म्हांरों सांचो प्रीतम, देखत रूप लुभाऊं**|**

**रैण पडै तब ही उठि जाऊं, भोर गये उठि आऊं|**

**रैणादिन वाके संग खेलूं, ज्यूं त्यूं वाहि भुलाऊं|**

**जो पहिराबै सोई पहिरूं, जो दे सोई खाऊं|**

**मेरी उणकी प्रीत पुराणी, उण विण पल न रहाऊं|**

**जहां बिठावें तितही बैठूं बेचे तो बिक जाऊं|**

**मीरां के प्रभु गिरिधर नागर, बार बार बलि जाऊं||**

2.

**मीरां मगन भई हरि के गुण गाय ||टेक||**

**सांप पिटारा राणा भेज्यां, मीरा हाथ दियो जाय|**

**न्हाय धोय जब देखण लागी, सालिगराम गई पाय|**

**जहर का प्याला राणा भेज्या, अमृत दीन्ह बनाय|**

**हाथ धोय जब पीवण लागी, हो गई अमर अंचाय|**

**मूव सेज राणा ने भेजी, दीज्यो मीरां सुलाय|**

**सांझ भई मीरां सोवण लागी, मानो फूल बिछाय|**

**मीरां के प्रभु सदा सहाई राखे बिघन हटाय|**

**भजन भाव में मस्त डोलती गिरिधर पे बलि जाय||**

सन्दर्भ

**विश्वनाथ त्रिपाठी, हिंदी साहित्य का सरल इतिहास**

**आचार्य रामचंद्र शुक्ल, हिंदी साहित्य का इतिहास**

**नागेन्द्र, हिंदी साहित्य का इतिहास**

**विश्वनाथ त्रिपाठी, मीराँ का काव्य**